ईश्वर की रहस्यमय हस्ती

लेखक
मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

विषय-सूची

क्या	कहाँ
दो शब्द	5
ईश्वर	7
• ईश्वर की अप्रत्यक्षता	8
• मार्ग की कठिनाइयाँ	9
• अस्तित्व और अस्तित्व-गुण	11
• मानवात्मा के अस्तित्त्व की पुष्टि	15
• कठिनाइयों और रुकावटों की वास्तविकता	18
• ईश्वरीय सत्ता	24
• मानव-अस्तित्व और ईश्वरीय अस्तित्व के मध्य अनुकूलता एवं सादृश्य	25
• ईश्वरीय सौंदर्य	26
• सारांश	27
• ईश-दर्शन	30
• ईश्वर ही हमारी स्वाभाविक अपेक्षाओं का सही उत्तर है	31

☆☆☆

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"शुरू ईश्वर के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

दो शब्द

बहुत थोड़े लोग होंगे जो ईश्वर में विश्वास न रखते हों। ईश्वर में विश्वास सभी को है। सामान्यतः वे जानते हैं कि ईश्वर ही उनका स्रष्टा और सृजनहार है। धरती उसी ने बनाई, आकाश का निर्माण उसी ने किया। सूर्य और चन्द्रमा उसी के आदेश से गतिशील दिखाई देते हैं। हवाओं को वही चलाता है। बादलों से पानी की वर्षा वही करता है। जिससे खेतियाँ हरी-भरी होती हैं। तरह-तरह के फल उसी ने पैदा किए। फलों में मिठास वही पैदा करता है। चमन में फूल वही खिलाता है। रात के पश्चात दिन और दिन के पश्चात रात वही लाता है।

फिर दिन में हम काम करते हैं। रात में निद्रा की चादर हम पर वही ओढ़ाता है। ऋतुओं में परिवर्तन वही लाता है। कभी शरद ऋतु तो कभी ग्रीष्म और वर्षा ऋतु। ये सब चमत्कार उसी एक ईश्वर के हैं। पहाड़ों की चोटियों को बर्फ़ से वही ढकता है। नदियाँ उसी के आदेश से बहती हैं।

फिर माता-पिता के हृदयों में अपनी सन्तान के प्रति प्रेम-भाव और वात्सलय वही उत्पन्न करता है। अपने बड़ों के लिए आदर की भावना किसी और ने नहीं ईश्वर ने ही जाग्रत की है। हम में जो नैतिक चेतना पाई जाती है उसका स्रोत वास्तव में ईश्वर ही है। इस प्रकार ईश्वर की करुणा और दया का हम प्रत्यक्ष अवलोकन करते हैं। प्रातबेला हमें उसका स्मरण कराती है और प्रत्येक रात्रि यह कहती है कि वास्तविक सुख और आराम उसी के सामीप्य में है।

जनसामान्य के सन्तोष के लिए यही पर्याप्त है कि ईश्वर वह है जो जगत और जीवन का आविष्कारकर्त्ता है। हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए। उसी की इच्छानुसार अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। वह बुराई को पसन्द नहीं कर सकता, हम भी बुराई से दूर रहें। सुकर्म और

परोपकार उसे पसन्द हैं, हम भी जनहित के लिए प्रयासरत हों। स्वार्थपरता, लोलुपता, हृदय संकीर्णता और दुर्भावना आदि दुर्गुणों से अपने को दूर रखें।

लेकिन कुछ विशिष्ट आत्माएँ ऐसी भी होती हैं जो इसी पर सन्तुष्ट नहीं होतीं। स्वभावतः कुछ लोग चाहते हैं कि यदि हम ईश्वर को प्रत्यक्षतः देख नहीं सकते तो कम-से-कम ऐसा हो कि हमें ईश्वर की सत्ता की प्रतीति और अनुभव हो सके और इस मार्ग में जो कठिनाइयाँ और रुकावटें सामने आती हैं वे दूर हों। हमें उसका ऐसा ज्ञान और बोध हो कि जिस प्रकार हमें उसकी करुणा, उपकार और दया की अनुभूति होती है उसी प्रकार हम अपने कल्पना पंखों से उसके चरणों को स्पर्श कर सकें अर्थात् हम ऐसा मत बना सकें कि उसके और अपने मध्य एकात्मता एवं समरूपता स्थापित हो जाए और उसके प्रति हमारा प्रेम एवं आसक्ति अत्यन्त स्वाभाविक और नैसर्गिक प्रतीत हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक इसी आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए लिखी गई है। हमारी आत्मा और परमात्मा के मध्य कोई अपरिचितता नहीं बल्कि समरूपता पाई जाती है। अधिकतर लोग अपने शरीर ही के आस-पास जीते हैं। इसी लिए अनुभव के आधार पर ईश्वर से उनका सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता। यदि हमें आत्मा के तल पर जीना आ जाए तो ईश्वर हमारी ज़रूरत बन जाए। दूसरे शब्दों में यदि हमें अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाए तो विचार और कल्पना लोक ही में नहीं बल्कि अस्तित्वगत अनुभव की दुनिया में भी हमें उसकी प्रतीति होने लग जाए और ईश्वर हमें अपने जीवन में सम्मिलित दिखाई देने लगे। हमारे जीवन में ऐसी क्रान्ति आ जाए कि हमारे जीवन का स्तर अत्यन्त उच्च हो जा और वास्तव में हम जीने का आनन्द लेने में समर्थ हो सकें।

—लेखक

ईश्वर

क़ुरआन की शिक्षा और उसके प्रशिक्षण का आशय और उद्देश्य और हमारे धर्म और ईमान की मूलात्मा ईश-प्रेम है। हम चाहे इसे पूर्ण आज्ञापालन के द्वारा व्यक्त करें या इसे आत्म-त्याग का शब्द दें या इसे कृतज्ञता-प्रकाशन और आभार स्वीकार करने की नीति से अभिव्यंजित करें। ऐसे दयावन्त, उपकारकर्ता और अपने बन्दों से प्रेम करनेवाले ईश्वर के प्रेम से हमारे हृदय रिक्त हों इससे बढ़कर अकृतज्ञता की बात और क्या हो सकती है। धर्म में मौलिक रूप से जो चीज़ अभीष्ट है वह है ईश्वर का स्मरण और यह कि ईश्वर की ओर सतत् उन्मुख रहा जाए। ईश-प्रेम भक्ति की मूलात्मा और ईशपरायणता का प्राण है। हमारा आध्यात्मिक जीवन इसी पर निर्भर करता है। ईश-प्रेम समस्त पैग़म्बरों की शिक्षा का केन्द्र रहा है। क़ुरआन ने विभिन्न स्थानों पर स्पष्ट किया है कि ईश्वर और उसके बन्दों का सम्बन्ध प्रेम का सम्बन्ध है।

जब ईश-प्रेम हमारे कर्मों और हमारे आंतरिक भावों का केन्द्र-बिन्दु है तो हमारे लिए इस अभीष्ट को प्राप्त करना कितना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि हमें ईश्वर का ज्ञान हो और हमें उसकी सत्ता और उसके अस्तित्व की जीवन्त कल्पना प्राप्त हो। इसके बिना न तो हमारे हृदय में ईश-प्रेम की भावना उभर सकती है और न हमारे अन्दर हुज़ूरी (ईश-उपस्थिति) का वह भाव उत्पन्न हो सकता है, जिसे हदीस में 'एहसान' कहा गया है।

यह विचार कि ईश्वर के विषय में यह तो कहा जा सकता है कि वह ऐसा नहीं है और ऐसा नहीं है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि वह ऐसा है और ऐसा है। क्योंकि सकारात्मक रूप से जो रूपरेखा भी बनाई जाएगी, वह हमारे ही मन-मस्तिष्क और विचार का आविष्कार होगा। और हमारा ससीम मन-मस्तिष्क, असीम की कल्पना करने में असमर्थ है। यह वह बुनियादी विचार है जिसके कारण

साधारणतः लोग ईश्वर की सत्ता के विषय में किसी प्रकार की कल्पना एवं धारणा के निर्धारण को सही नहीं समझते। किन्तु यह एक तथ्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि केवल नकारात्मक (Negative) धारणा के अंतर्गत हम अस्तित्व को निरस्तित्व से विलग नहीं कर सकते। इसलिए आवश्यक है कि हमारे सामने कोई न कोई स्वीकारात्मक (Positive) पक्ष भी हो। स्वाभावतः हृदय विद्यमान की ओर आकृष्ट होता है, अविद्यमान की ओर आकृष्ट नहीं होता है। इसी लिए क़ुरआन ने सारा ज़ोर सकारात्मक पहलू पर दिया है, नकारात्मक के सम्बन्ध में संग्राहक बात यह कह दी गई है कि–

"उसके सदृश कोई चीज़ नहीं।" (42:11)

"और न कोई उसका समकक्ष है।" (112:4)

नकारात्मक कल्पना को मानव-मन पकड़ नहीं सकता। यद्यपि उसके अंदर 'चाह' एक ऐसे ईष्ट की रखी गई है जो उसकी पकड़ में आ सके। उसकी आत्मा एक ऐसी प्रिय छवि की अभिलाषा रखती है, जिसका प्रेम उसकी रग-रग में समा सके, जिसके अप्राप्य प्रतीत होने वाले सौंदर्य के पीछे प्रेम-विह्वलता के साथ दौड़ने पर वह बाध्य हो और जिसकी बड़ाई के दामन को थामने के लिए नम्रता का हाथ वह बढ़ा सके। नकारात्मक धारणा से हमारी चाहत की प्यास नहीं बुझती। ऐसी धारणा मात्र दार्शनिक विचार पैदा कर सकती है, वह हृदय का जीवन और ओजस्वी आस्था नहीं बन सकती।

ईश्वर की अप्रत्यक्षता

ईश्वर हमारी निगाहों के लिए अप्रत्यक्ष है। हमारे नेत्रों को ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं कि वे ईश्वर को देख सकें। ईश्वर की अप्रत्यक्षता हमारे पहलू से है अन्यथा वह तो बिल्कुल प्रत्यक्ष और पूर्ण प्रकाश के साथ चतुर्दिक प्रकाशवान है। जगत् की समस्त चीज़ें उसी के कारण आविर्भूत और विद्यमान हैं। चीज़ों के प्रकाशन का कारण केवल ईश्वर ही है।

सीमित शक्ति रखनेवाली निगाहें केवल उसी चीज़ को पकड़ सकती हैं जो सीमित हो, जिसमें कमी-बेशी होती हो। जो दिखाई देने के साथ कभी छिप सकती हो, जिसकी कोई विरोधी चीज़ भी हो जिसके समक्ष आकर वह प्रकट हो सके। किन्तु परम और निरपेक्ष ईश्वर ससीम नहीं। उसका प्रकाश अत्यंत बढ़ा हुआ और अक्षय है। उसका न कोई प्रतिद्वन्दी है और, न उसका कोई समकक्ष। वह ऐसी व्यापक, अयोगिक और विशुद्ध सत्ता है जो प्रत्येक दिशा में समान रूप से छाई हुई है। पूर्णतम प्रकाश का अवलोकन सीमित क्षमता रखनेवाली आँखों से संभव नहीं। अत्यधिक प्राकट्य ही वह आवरण है, जो ईश्वर को लोगों की निगाहों से छिपाए हुए है। संसार में सूर्य-प्रकाश का अनुभव हमें इसी लिए होता है क्योंकि वह कभी हमारे सामने से हट भी जाता है। हर स्थान पर सदैव यदि समान रूप से धूप मौजूद रहें तो हमें उसकी ख़बर नहीं हो सकती। इसी तरह यदि आवाज़ की तीव्रता सीमा से आगे बढ़ जाए तो उसे भी हम सुन नहीं सकते।

ईश्वर ने अपने आप को लोगों की दृष्टि से छिपाकर उन्हें बौद्धिक प्रकाश में स्वतन्त्र छोड़ दिया है कि वह स्वयं अपनी खोज से उसे पाएँ स्वयं अपनी बुद्धि और अन्तःकरण से उसे पहचानें और उसका जीवन्त अनुभव प्राप्त करें और अपनी इच्छा और इरादे से उसकी बन्दगी में लग जाएँ। उसकी अप्रत्यक्षता से अभीष्ट वास्तव में मानव के स्वतंत्र अधिकार और बुद्धि और उसके अन्तःकरण की परीक्षा है। इसके अतिरिक्त हमारे नैतिक प्रशिक्षण के लिए भी यह आवश्यक था कि वह अपने आपको हमसे छिपाकर और मार्गदर्शन के सारे साधन जुटाकर हमें उनके बीच अपनी तलाश और खोज में स्वतंत्र रखता।

मार्ग की कठिनाइयाँ

ईश्वर की तत्वदर्शिता और उसकी हिकमत ने परोक्ष लोक और प्रत्यक्ष लोक के मध्य कार्य-कारण के इतने परदे डाल रखे हैं कि निगाहें उन परदों को पार करने में असमर्थ रह जाती हैं। वे बाह्य कारकों के पीछे कार्यशील तथ्य को साधारणतया पकड़ नहीं पातीं।

मनुष्य महसूस चीज़ों की छाया में पैदा होता, पलता और बढ़ता है। ज्ञानेन्द्रियों का माध्यम, जो हमारे जीवन के साथ लगा हुआ है, जन्म के साथ ही पैदा होता है और जीवनभर शेष रहता है। इसलिए ऐसी चीज़ की कल्पना और उसकी समझ जो अत्यन्त विशुद्ध और निर्लिप्त हो, जिसका ज्ञान प्राप्त करने में ज्ञानेन्द्रियों का कहीं भी प्रयोग न होता हो, अत्यंत कठिन है। मनुष्य सुनने, देखने, जानने, इरादा करने, और सामर्थ्य आदि गुणों के केवल विशिष्ट और सीमित रूपों से परिचित है। जिनका प्रत्यक्ष लोक में वह निरीक्षण करता रहता है। वह इन गुणों के निरपेक्ष रूप से नितांत अपरिचित है। इसलिए ऐसी सत्ता की कल्पना करने में जो निरपेक्ष गुणों से आभूषित हो, उसे शीघ्र सफलता प्राप्त नहीं होती। मानव-बुद्धि के लिए किसी ऐसी व्यापक, निरपेक्ष और विशुद्ध सत्ता का मौजूद होना असम्भव नहीं है जो अपनी निरपेक्षता और विशुद्धता के साथ हर तरफ़ व्याप्त हो। किन्तु ऐसी परम सत्ता की कल्पना और उसे अपनी बुद्धि में लाना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। मनुष्य जब कभी मूर्तमान वस्तुओं से परे किसी सत्ता की कल्पना करता है तो चेतन या अचेतन ढंग से उसे भी मूर्त रूप देने लगता है। मूर्तमान वस्तुओं से परे सूक्ष्मतम सत्ता ख़याल में लाने की उसकी क्षमता पर बिल्कुल संदिग्ध मालूम होती है। उसकी दृष्टि में मूर्तमान रंग-रूप ही के साथ व्यक्तित्व और सत्ता की कल्पना संभव है। वायु और बिजली के अस्तित्व को स्वीकार करने में उसे कोई कठिनाई नहीं होती। हालाँकि इनमें से किसी तक उसकी दृष्टि की पहुँच संभव नहीं। वह बहुत-सी विशुद्धतम वस्तुओं को मानता है, जिनको उसकी आँखों ने कभी नहीं देखा। ईश्वर के मानने में भी उसे जो कठिनाई होती है, वह यह नहीं कि उसके अस्तित्व को कैसे स्वीकार किया जाए, जबकि वह अनुभूत चीज़ों से परे और अपनी पहुँच से दूर है। मूल कठिनाई उसके स्वरूप के समझने और उसकी कल्पना में है। मानव-बुद्धि को शीघ्र इसका विश्वास नहीं हो पाता कि मूर्तमान चीज़ों से परे अस्तित्व भी वैयक्तिक गुणों से विभूषित हो सकता है। मौलिक कठिनाई उसकी दृष्टि में यही है कि एक सूक्ष्म और अमूर्त चीज़ वैयक्तिक गुणों से कैसे विभूषित होगा। निरपेक्षता और निर्बाधता के साथ विशिष्टता को बनाए रखना उसके लिए कोई सरल बात नहीं है।

सृष्टि के इस कारख़ाने में परदादारी की ऐसी व्यवस्था पाई जाती है कि सत्य के सौन्दर्य और उसकी पराकाष्ठा का निरीक्षण अत्यंत कठिन है। हमारा बाह्य अस्तित्व स्वयं हमारे लिए एक बड़ा आवरण है। हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ (स्पर्श-शक्ति, चक्षु-शक्ति, श्रवण शक्ति, स्वाद-शक्ति और घ्राण-शक्ति) परदादारी का कार्य कर रही हैं। हम ज्ञान की किसी ऐसी शक्ति या किसी ऐसे प्रकार से परिचित नहीं हैं जिससे बाह्य जगत की घटनाओं और बाह्य वस्तुओं का ज्ञान बिना किसी माध्यम से प्राप्त हो। इसी तरह प्रत्यक्ष रूप, मुखाकृति और रंग और कान्ति से हटकर किसी सौंदर्य की कल्पना भी हमारे लिए बिल्कुल नवीन कल्पना है, जिसकी उपलब्धि हमारे लिए अत्यंत दुष्कर है।

अस्तित्व और अस्तित्व-गुण

ईश्वर की कल्पना और धारणा में जो चीज़ें रुकावट बन रही हैं, उनपर क़ाबू पाने के लिए ज़रूरी है कि हम यह जानने का प्रयास करें कि सृष्ट-प्राणी का अपने अस्तित्व की दृष्टि से स्रष्टा के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है? सृष्ट-तत्व का जो सम्बन्ध ईश्वर से है उसके आकार-प्रकार को शरीअत ने स्पष्ट नहीं किया है। इस सम्बन्ध में क़ुरआन ने जो कुछ कहा है, उससे अधिक समझने की क्षमता भी हममें नहीं है। क़ुरआन में है—

> "उसकी शान यह है कि जब उस (ईश्वर) ने किसी चीज़ के उत्पन्न करने का संकल्प किया तो कहा, 'हो जा' तो वह चीज़ अस्तित्व में आ गई।" (क़ुरआन, 36:82)

सृष्ट-जीव ईश्वर के संकल्प और इरादे का प्रकट रूप हैं। वे ईश्वर की संकल्प-शक्ति का प्रतिरूप हैं। ईश्वर की संकल्प-शक्ति को हम ईश्वर के आदेश (Directive force) से भी अभिव्यंजित कर सकते हैं। हमारी कल्पना-शक्ति कल्पना-लोक में बहुत-सी चीज़ों की रचना करती रहती है। हमारी काल्पनिक रचना अपने अस्तित्व, स्थायित्व और गुणों आदि की दृष्टि से निरन्तर हमारे ध्यान पर निर्भर करती है। हम और हमारी काल्पनिक रचना एक ही स्थान में समाए हुए हैं। यदि दोनों

समान हैसियत के स्वामी होते तो कभी भी एक स्थान में दो के रहने की गुंजाइश पैदा नहीं हो सकती।

इस मिसाल से किसी हद तक इस बात का अन्दाज़ा किया जा सकता है कि सृष्टि का अपने सृष्टि-कर्त्ता से अस्तित्व की दृष्टि से किस प्रकार का सम्बन्ध होता है। संसार के निर्माण की अंतिम सामग्री ईश्वरीय गुण ही हो सकते हैं। सृष्टि के अस्तित्व का मूल, ईश्वर का अस्तित्व है। वास्तविक अस्तित्व पर अत्यंत निर्बाध और अनिश्चितता की दृष्टि से विचार कीजिए तो बुद्धि उसके पकड़ने में असमर्थ रह जाती है। अलबत्ता प्रदर्शन की दृष्टि से उसकी अगणित श्रेणियाँ हैं। प्रभुता के पद और दासता के पद को एक समझना अधर्म है।

सृष्ट-जीव ईश्वर के अस्तित्व से लाभान्वित होने पर भी सृष्ट-जीव है, ईश्वर नहीं। सृष्टि से अस्तित्व का सम्बन्ध निजत्व का नहीं है। किसी अस्तित्त्व के आविर्भाव और उसकी प्राथमिकता का सम्बन्ध केवल ईश्वर से है। सृष्टि के साथ वह केवल गौण की हैसियत रखता है। जगत की वास्तविकता मात्र यह है कि ईश-ऊर्जा (Divine Energy) ने मूर्तरूप धारण कर लिया। यह जगत और उसका पूर्ण विस्तार भौतिक एटम, इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन की यान्त्रिक गति से लेकर मनुष्य की वैचारिक स्वतंत्रता तक सब एक ईश्वरीय अस्तित्व के चमत्कार हैं। ईश्वरीय ऊर्जा से अभिप्रेत ईश्वर का स्वरूप नहीं बल्कि उसकी रचनात्मक ऊर्जा है। जगत् के अस्तित्व का मूल तत्त्व ईश्वर का वह अस्तित्व नहीं जो उसके निज के साथ क़ायम और शेष रहनेवाला है बल्कि वे अस्तित्व-रश्मियाँ हैं, जो ईश्वर से सूर्य की किरणों के सदृश प्रतिबिम्बित हो रही हैं। सृष्टि का स्रोत (Origin) ईश्वर है। स्रोत में समस्त अस्तित्व-सम्बन्धी गुण निर्बाध एवं व्यापक रूप में पाए जाएँगे। ईश्वरीय गुणों में से एक अंश का पाना ईश्वरत्व का कोई अंश पा लेने का पर्याय कदापि नहीं हो सकता। ईश्वरत्व इससे नितांत भिन्न है, जिसके रहस्य को मनुष्य नहीं पा सकता।

आधुनिक विज्ञान (Modern Science) के शोध की दृष्टि से जगत् ऊर्जा का एक मूर्तरूप है। एक ऊर्जा दूसरी ऊर्जा में परिवर्तित भी हो सकती है। उदाहरणार्थ प्रकाश (Light) को ताप (Heat) में और ताप

को विद्युत (Electricity) में परिवर्तित किया जा सकता है, बल्कि अब तो यह बात यहाँ तक पहुँच चुकी है कि पदार्थ अपनी वास्तविकता की दृष्टि से एक विद्युत-धारा नहीं, केवल विचारात्मक संभावना की लहर है। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी वाली वह दूरी जिसे नादानों ने धर्म और विज्ञान के मध्य पैदा कर दी थी अब विलुप्त होती दिखाई दे रही है। 20वीं शताब्दी का विज्ञान धर्म के साथ एकात्मता का सम्बन्ध स्थापित करता जा रहा है। अब दोनों में कोई अपरिचितता शेष नहीं रही। इस नवीन परिवर्तन के विषय में जोड (C.E.M. Joad) ने लिखा है—

> "इस नवीन परिवर्तन का तात्कालिक प्रभाव यह है कि अब भौतिक वैज्ञानिक (Physicist) बढ़ती हुई ज़रूरत महसूस कर रहे हैं कि उन समस्याओं को हल करने के लिए जिन्हें भौतिक-विज्ञान (Physics) पैदा करता है; भौतिक-विज्ञान की परिधि से बाहर जाना पड़ेगा। अब क्योंकि दर्शन (Philosophy) की आवश्यकता महसूस हो रही है, इसलिए जैसा कि पहले कहा, बहुत-से भौतिक-विज्ञानी स्वयं दार्शनिकों की तरह विचार करने लग गए हैं और वे इस निष्कर्ष पर पहुँच गए हैं कि इस बाह्य जगत् के अतिरिक्त एक जगत् और है। यह दूसरा जगत उनके मतानुसार एक आत्मिक लोक है और पदार्थ मात्र उसका बाह्य लक्षण (Apperance) है। अब इसके आगे भी एक घोषणा है कि वास्तव में मात्र चित् ही एक वास्तविक वस्तु है और पदार्थ उसकी संरचना है। यह उद्घोषणा आधुनिक युग के भौतिक वैज्ञानिक ऐसी तत्परता और विश्वास के साथ करते हैं जिस प्रकार आज से 50 वर्ष पूर्व उनके पूर्ववर्ती भौतिकवादी (Materialist Predecessors) यह दावा करते थे कि मात्र पदार्थ ही तथ्य (Real) है और चित् केवल उसका एक साधारण प्रदर्शन है।"
>
> (Guide to the Modern Thought by C.E.M. Joad)

आइंस्टाइन के सिद्धान्त की दृष्टि से जगत् कुछ संगठित घटनाओं या संघनित विचारों (Condensed Thoughts) का संग्रह है, जिसका मूल

गति या ऊर्जा है। सापेक्षतावाद (Theory of relativity) ने समय को दिक् और काल (Time and Space) में समाविष्ट करके भौतिकता की परंपरागत धारणा को अत्यंत आघात पहुँचाया है। सामान्य विचार यह है कि पदार्थ वह है जो समय या काल में स्थित और दिक् में गतिशील है; किन्तु सापेक्षतावाद की दृष्टि से यह धारणा असत्य है। अब पदार्थ केवल संगठित घटनाओं का संग्रह बन चुका है। अब यह जगत् कोई वस्तु नहीं है जो वातावरण में पड़ी हो, बल्कि केवल घटनाओं (Events) का भवन है या मात्र कर्म (Action)। जेम्स जींस के मतानुसार "विद्युतधारा वास्तव में चित् की पैदावार है।"

बर्ट्रेण्ड रसल की दृष्टि में भी पदार्थ मात्र घटनाओं की विशुद्ध गणितीय-विशेषताओं का नाम है। यह समझने के लिए कि कोई घटना किस प्रकार घटित हुई, पदार्थ एक फ़ॉर्मूला (Formula) का काम देता है। ओस्पेंसकी (Ouspensky) के शब्दों में पदार्थ एक दशा (Condition) है जिस प्रकार अंधापन (Blindness) कोई वस्तु नहीं, एक दशा का नाम है। मानो हम यहाँ वास्तविक तथ्य का सीधे अध्ययन नहीं करते केवल तथ्य की परछाइयों तक ही हमारी पहुँच हो पाती है। पदार्थ अपने में कोई वास्तविक वस्तु नहीं है, बल्कि वह तथ्य का मात्र एक लक्षण है। अस्तु, आधुनिक विज्ञान इस ज्ञान तक आ पहुँचा है कि इस जगत् की यांत्रिक व्याख्या अब संभव नहीं है।

जगत् ईश्वर के ईश्वरीय ऊर्जा के बल पर चल रहा है जिस प्रकार सूर्य की किरणों के आने के समय उनका आभास नहीं होता। उन्हें हम उस समय महसूस करते हैं जब किसी चीज़ पर पड़ने के पश्चात् वे परावर्तित होती हैं। ठीक इसी प्रकार ईश्वर और उससे अस्तित्व सम्बन्धी रश्मियों के आने का हमें आभास नहीं हो पाता, किन्तु उनके कहीं पहुँचकर परावर्तित होने पर हमें उनका आभास हो जाता है। सघनता और एकत्रीकरण में अप्रकाट्य होता है और विस्तार एवं विकेन्द्रीकरण में प्रकटीकरण होता है, क्योंकि विस्तार विकेन्द्रीयता पर निर्भर करता है, इसलिए विकेन्द्रीयता का हमें आभास हो जाता है। सिनेमा देखनेवालों को प्रकाश और उसके साथ चित्रों को आने का

आभास नहीं हो पाता है, किन्तु वही चित्र प्रदर्शन के समय विकेन्द्रीकरण के कारण परदे पर स्पष्ट दिखाई देता है।

मानवात्मा के अस्तित्त्व की पुष्टि

जीवन की यांत्रिक विचारधारा की दृष्टि से शरीर की सम्पूर्ण बाह्य एवं यांत्रिक इन्द्रियों से काम लेनेवाला मात्र मनुष्य का मस्तिष्क (Brain) है। मनुष्य अपनी शारीरिक विशिष्टताओं से भिन्न कोई चीज़ नहीं है। किन्तु हम देखते हैं कि मस्तिष्क के विभिन्न भागों में प्रत्येक भाग किसी विशेष शक्ति का स्रोत है। हम मस्तिष्क में कोई ऐसी केन्द्रीय शक्ति सिद्ध नहीं कर सकते जो इन समस्त शक्तियों को उपकरण (Instrument) की तरह प्रयोग में लाती हो। यदि मस्तिष्क में इस प्रकार का कोई महसूस केन्द्रीय भाग मिल भी जाए तब भी प्रयोगों से यह सिद्ध है कि जो चीज़ शारीरिक या शरीर का कोई भाग होगी, उसकी हैसियत एक उपकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती। जब वह चीज़ शरीर न होगी तो शरीर का गठन और योग की कोई दशा भी नहीं हो सकती, क्योंकि मनोवृत्ति योग्यिकता और अन्य सभी पराश्रित वस्तुएँ शरीर के अधीन होती हैं। वे शरीर के समस्त बाह्य और यांत्रिक अंशों पर शासन नहीं कर सकतीं। इसलिए अनिवार्यतः हम एक ऐसी शक्ति के मानने पर बाध्य हैं जो शारीरिक न हो, किन्तु शरीर के समस्त अवयव और अंगों पर एकमात्र उसी का अधिकार हो।

शरीर छोटे-छोटे विभिन्न रूप की कोठरियों के संग्रहों से निर्मित है। उन्हें कोश (Cell) कहते हैं। बहुत-से वृक्ष और कीड़े-मकोड़े केवल एक कोश के बने होते हैं, जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्र से ही देखा जा सकता है। आँखों से दिखाई देनेवाले समस्त वृक्ष और जीव-जन्तु कोशों की एक बड़ी संख्या से मिलकर बने होते हैं, लेकिन उनके अस्तित्व का प्रारम्भ एक ही कोश से होता है, जिस प्रकार कोई भवन हज़ारों ईंटों से बना होता है उसी प्रकार करोड़ों कोशों से मानवीय शरीर निर्मित होता है।

एक प्रकार के कोशों के झुण्ड को, जो केवल एक प्रकार का निश्चित कार्य करते हैं, ऊतक (Tissue) कहते हैं। एक ही प्रकार के

कार्य करनेवाले कोश जब शरीर का कोई ऐसा अंग बनाते हैं जो शरीर और विशिष्टिताओं की दृष्टि से दूसरे अंगों से भिन्न होता है उसे अवयव (Organ) कहते हैं। प्रत्येक अवयव का अपना एक विशिष्ट कार्य होता है जिसे वह पूरा करता हैं; फिर भी समस्त अवयवों के कार्यों में परस्पर समन्वय (Co-ordination) पाया जाता है। कई अवयव परस्पर मिलकर एक प्रकार का कार्य करते हैं तो उन्हें हम एक तंत्र के अन्तर्गत रख सकते हैं। हमारे शरीर में ऐसे कई तंत्र पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ— श्वास-तंत्र, मांसपेशीय-तंत्र, पाचन-तंत्र, स्नायु-तंत्र (Nervous System), रुधिरसंचार-तंत्र इत्यादि।

शरीर के कोश टूटते और टूटकर दूसरे नवीन कोशों में परिवर्तित होते रहते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि दस वर्ष के पश्चात मनुष्य के शरीर में पहले का एक कोश भी अपनी मूलावस्था में शेष नहीं रहता। शरीर के समस्त कोश बिल्कुल बदल चुके होते हैं। मानो प्रति दस वर्ष के पश्चात् हमें बिल्कुल दूसरा नया शरीर मिलता रहता है। किन्तु इस महान् शारीरिक परिवर्तन के होते हुए भी हमारा व्यक्तित्व इससे बिल्कुल प्रभावित नहीं होता। हमारा व्यक्तित्व वही रहता है, जो दस वर्ष पहले था। इसलिए अनिवार्यतः हमारे शरीर के साथ कोई ऐसी वस्तु अवश्य है, जिसपर शारीरिक परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हमारा व्यक्तित्व यदि मात्र हमारे शरीर की प्राकृतिक प्रक्रियाओं का नतीजा होता तो शरीर के साथ-साथ वह भी बदलता रहता। फिर ज़ैद नामक व्यक्ति वही ज़ैद न रहता जो 10 वर्ष पूर्व था। और न उसे इस महत्वपूर्ण परिवर्तन की ख़बर हो सकती। इन शारीरिक परिवर्तनों से परे, पदार्थ से भिन्न, स्थायी और अपने में स्वयं में पूर्ण जिस अस्तित्व का पता चलता है उसे हम आत्मा (Soul) कहते हैं। समस्त व्यक्तिगत गुण, चेतना, ज्ञान और संकल्प आदि इसी आत्मा के चमत्कार हैं।

आधुनिक खोज ने इस धारणा को असत्य घोषित कर दिया है कि चेतना और ज्ञान और संकल्प आदि गुण मस्तिष्क की उपज हैं। चेतना का अलग अपना अस्तित्व है। मस्तिष्क के माध्यम से केवल उसका प्रदर्शन होता है। जिस प्रकार आवाज़ वायुमण्डल की लहरों में मौजूद होती है। रेडियो सेट की उसे पैदावार नहीं कह सकते। रेडियो सेट के

माध्यम से मात्र उसकी अभिव्यक्ति होती है। यदि मनुष्य का व्यक्तित्व केवल उसकी शारीरिक प्रक्रियाओं का फल होता, जैसा कि भौतिकवादियों का विचार है, तो उसका स्थायी रूप से और निरंतर एक हालत पर स्थिर रहना संभव न होता। चेतना को यदि भौतिक विकास का परिणाम स्वीकार कर लिया जाए तो स्थायी रूप से उसकी कोई हैसियत शेष नहीं रहती। इस प्रकार तो वह पूर्णतः निर्भर करेगा उस वस्तु की क्रिया पर जिससे उसे विकास का उच्च स्थान प्राप्त हुआ है।

ओस्पेंसकी (Ouspensky) के शब्दों में "मस्तिष्क (Brain) वह प्रिज़्म (Prism) है जिसमें से मानव-आत्मा की किरणें गुज़रती हैं तो उनका एक हिस्सा हमारे समक्ष विचार और चेतना के रूप में व्यक्त (Manifest) हो जाता है।" (Tertium Organum, P. 164)

मानव-मस्तिष्क में ख़राबी आने से मानव के आत्मिक अस्तित्व पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। मस्तिष्क एक दर्पण है, जिसमें चेतना के प्रतिरूप प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। मस्तिष्क के ख़राब होने से वे प्रतिबिम्ब ही प्रभावित होते हैं।

केवल यह कह देने से कि मनुष्य ऑक्सीजन, सोडियम, पोटेशियम, सल्फ़र, क्लोरीन, आयरन, आयोडिन, कैलशियम और मैग्नीशियम का योग है, यह समस्या हल नहीं हो जाती। प्रोफ़ेसर स्टॉविट ने मानव-मस्तिष्क की विचित्रताओं का निरीक्षण करके लिखा है कि मस्तिष्क का पदार्थ से पैदा होना प्रकृति के सम्पूर्ण तंत्र के विपरीत है। यह मानो अनस्तित्व से अस्तित्व की रचना के चमत्कार को स्वीकार करना है। (Mind & Matter, P-116)

पश्चिम की विभिन्न यूनिवर्सिटियों के प्रोफ़ेसर और विद्वानों ने इस सम्बन्ध में प्रयोग भी किए हैं। उन्होंने विभिन्न लोगों पर सम्मोहन विद्या (Hypnotism) का प्रयोग किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव-शरीर में आत्मा का अपना एक अलग अस्तित्व है। उन्होंने अपने शोध-कार्य को पुस्तक-रूप में सुरक्षित कर लिया है।

कठिनाइयों और रुकावटों की वास्तविकता

किसी व्यक्तित्व की कल्पना के लिए व्यक्तिगत गुणों का मस्तिष्क में आना आवश्यक है। हम व्यक्तिगत गुणों और विशेषताओं के बिना किसी व्यक्तित्व की कल्पना नहीं कर सकते। जीवन, ज्ञान, संकल्प और चेतना इत्यादि गुणों के बिना व्यक्तित्व की कल्पना संभव नहीं। एक पूर्ण व्यक्ति में इन गुणों का पूर्ण रूप से विद्यमान होना आवश्यक है। इसके साथ ही उसमें सौंदर्य का होना भी ज़रूरी है। इसके बिना किसी पूर्ण व्यक्तित्व की हम कल्पना नहीं कर सकते।

यहाँ मूल रूप से यह कठिनाई सामने आती है कि हम इन अस्तित्वगत गुणों से केवल प्रत्यक्ष उदाहरण और सापेक्षित रूप में ही परिचित हैं। ईश्वर की सत्ता निरपेक्ष, निर्बाध्य और निश्चयता एवं सीमाओं से परे है। इसलिए उसके गुण भी उसके साथ निरपेक्ष और अपरिमित होंगे। देखने के लिए ईश्वर हमारी तरह आँख का मुहताज नहीं, न सुनने के लिए उसे कानों की ज़रूरत है, न बोलने के लिए किसी जिह्वा की आवश्यकता है।

इस भौतिक जगत् में चीज़ों की वास्तविकताएँ भौतिक मलिनताओं से युक्त हैं। यहाँ वास्तविकताओं और अमूर्त तथ्यों का प्रदर्शन भौतिक आवरणों में होता है। यहाँ जो चीज़ जितनी ही अधिक सूक्ष्म और विशुद्ध होगी, वह उतनी ही अधिक गुप्त और हमारी बुद्धि और चेतना की पकड़ से दूर होगी। हमें परम सत्ता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपनी सामर्थ्य की सीमा तक उन गुणों का ज्ञान प्राप्त करना होगा जो सापेक्ष और प्रत्यक्ष उदाहरण न हों। इस सिलसिले में जब हम मानवीय गुण-ज्ञान, संकल्प, श्रवण और चक्षु-शक्ति तथा सौंदर्य इत्यादि पर नज़र डालते हैं तो इनके द्वारा हमें गुणों के उच्च स्तर के समझने में भी सहायता मिलती है। मानव-अस्तित्व से जिन अस्तित्वगत गुणों का प्रदर्शन होता है, वे वास्तव में परमेश्वर ही के गुणों के प्रतिबिम्ब हैं। जिन्हें उसकी कृपा ने इस माटी की काया अर्थात् मनुष्य पर डाल रखा है। इसी प्रतिबिम्ब के कारण उसे धरती में विशेष अधिकार और पद प्राप्त हुआ।

हमारी चक्षु और श्रवण वास्तव में वहाँ जाकर चरितार्थ होते हैं जहाँ आत्मा स्वयं सुनती और देखती है। आत्मा का श्रवण और चक्षु आत्मिक अनुभव का दूसरा नाम है। आत्मा के अनुभव के बिना न संसार की कोई वस्तु देखी जा सकती है और न उसके बिना कोई आवाज़ सुनी जा सकती है।

आत्मा तक किसी चीज़ का रंग और किसी का शरीर नहीं पहुँचता। आत्मा तक पहुँचने से पहले ये चीज़ें सूक्ष्मता में परिवर्तित हो जाती हैं। भौतिक वस्तुओं को क्रमशः नेत्र और मस्तिष्क (Brain) आदि से गुज़ार कर सूक्ष्मता की दशा में लाया जाता है। तत्पश्चात् आत्मा को उसकी अनुभूति होती है। शारीरिक तंत्र में देखने-सुनने का मूल केन्द्र मस्तिष्क है। मस्तिष्क में ज्ञानेन्द्रियों की हैसियत पृथक-पृथक नहीं रह जाती। इनमें पृथकता और भिन्नता मस्तिष्क-केंद्र से हटकर ही उत्पन्न होती है। आत्मा में तो देखने, सुनने और दूसरे गुणों के मध्य और कोई अन्तर शेष नहीं रहता। आत्मा एक संग्राहक गुण से आभूषित है, यद्यपि पृथकता के समय उसी एक गुण के विभिन्न पक्ष प्रकट होते हैं। किन्तु गुणों के मूल-स्रोत में उनके समस्त पक्ष एक बिन्दु पर केन्द्रीभूत होते हैं। आत्मा की सुप्त-शक्तियाँ यदि जागृत हो जाएँ तो माध्यमों के बिना भी उसमें देखने और सुनने की क्षमता विद्यमान है। आज भी प्रत्येक बाह्य वस्तु का निरीक्षण उसके लिए स्वयं उसका अपना निरीक्षण है। यद्यपि इस निरीक्षण के लिए अभी वह बाह्य उपादानों से बिल्कुल मुक्त नहीं हो सकती।

हमारा श्रवण और चक्षु आत्मिक अनुभव का दूसरा नाम है। आत्मिक अनुभव एक सूक्ष्म और अकथनीय अनुभव है। मनुष्य को संग्राहक गुण और कुशलता प्राप्त है। वह जो कुछ महसूस करता है और जो भाव भी उसमें उत्पन्न होते हैं; वे सब उसमें पहले से बीज रूप में विद्यमान होते हैं। कोई आन्तरिक या बाह्य प्रेरक उसके भीतर वह चीज़ पैदा नहीं कर सकता जो मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान न हो। यहाँ तक कि ख़ुदा के पैग़म्बर जो ज्ञान हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं वह भी हमारी प्रकृति की आवाज़ होता है। पैग़म्बर जिन तथ्यों

से हमें अवगत कराते हैं, ऐसा नहीं है कि हम उनसे बिलकुल अपरिचित होते हैं, बल्कि हम उन्हें भूले हुए होते हैं।

हम जब बाहर किसी वस्तु को देखते हैं तो उस देखी जानेवाली वस्तु का एक मूल जो हमारे भीतर भी मौजूद होता है, प्रकट हो जाता है। इस प्रकार वास्तव में देखते या सुनते समय हमें अपने अंतर ही का निरीक्षण होता है। मौलाना रूमी ने सत्य ही कहा है—

लुत्फ़े-शीरो-अंगबीं अक्से-दिलस्त।
सरख़ुशी आँ अज़ दिले-मा हासिलस्त।।
नूरे नूरे-चश्म खुद नूरे दिलस्त।
नूरे-चश्म अज़ नूरे-दिल-हा हासिलस्त।।
बाज़ नूरे नूरे-दिल नूरे-ख़ुदास्त।
कू ज़े नूरे-अक़्ल-व-हिस पाक व जुदास्त।।
परतवे-रूहस्त नुक़्त व चश्म-व-गोश।
परतवे आतिश बुवद दर आब जोश।।

अर्थात् "दूध और शहद का स्वाद वास्तव में हृदय की प्रतिच्छाया है। यह स्वाद अपने दिल से प्राप्त होता है। हमारे अपने नेत्र के प्रकाश का प्रकाश हृदय का प्रकाश है। नेत्र का प्रकाश वास्तव में हृदय के प्रकाश से प्राप्त है। फिर हृदय के प्रकाश का प्रकाश ईश-प्रकाश है जो बुद्धि के प्रकाश और इन्द्रीय अनुभव से भिन्न और परे है। वाक् और चक्षु और श्रवण आत्मा के प्रतिबिम्ब हैं (जिस प्रकार) खौलते हुए जल में अग्नि प्रतिबिम्बित होती है।"

बाह्य जगत् में जिस सुन्दरता, वाणी के माधुर्य और सुन्दर रूप आदि का हमें अनुभव होता है, वास्तव में वे सब परम सौंदर्य और परमवाणी के माधुर्य आदि के मूर्तमान लक्षण हैं। इन लक्षणों के प्रति हम आसक्त इसलिए हो जाते हैं क्योंकि हम समझते हैं कि श्रवण, चक्षु का सम्बन्ध केवल उन मूर्तमान चीज़ों से है जिन्हें हम देखते और सुनते हैं। इनके बिना हमारे देखने-सुनने की चाहत के लिए कुछ भी शेष नहीं न रहेगा।

हम जब बाह्य जगत् में कुछ देखते या सुनते हैं तो वास्तव में देखनेवाले और देखी जानेवाली वस्तु या सुनवाले और सुनी जानेवाली आवाज़ के मध्य एक प्रकार का एकत्व (Unity) का आविर्भाव होता है। उस समय अनुभवकर्ता ही से अनुभूत का प्रदर्शन होने लगता है। यही प्रदर्शन की वह दशा है जिसे हम देखना या सुनना कहते हैं।

यहाँ यह संदेह किया जा सकता है कि मनुष्य दुनिया में केवल सुन्दरता ही का निरीक्षण नहीं करता है, उसे कुरूपताओं और कर्कश आवाज़ों का भी तो अनुभव होता है; तो क्या इसे भी उसके अन्तर का चमत्कार कहा जाएगा? इसका उत्तर यह है कि मनुष्य का अन्तर केवल सौंदर्य ही का कोश है। उसका कुरूपताओं से कोई सम्बन्ध नहीं। गुणों और विशिष्टताओं की हैसियत अस्तित्वगत है। दोष और कुरूपता आदि की हैसियत अनस्तित्वगत है। अंधकार का कोई अस्तित्व नहीं। प्रकाश के अभाव का ही नाम हम अंधकार दे देते हैं। मुसीबतों और कठिनाइयों की हैसियत अस्तित्वगत नहीं है, आराम और चैन के दिन जाने का दूसरा नाम कठिनाई और मुसीबत है। ईश्वर की ओर से केवल भलाइयों का अवतरण होता है। जब वह किसी कारण से उन्हें छीन लेता है तो इसके परिणामन ही बुराई और दोष आविर्भूत होते हैं। हमें कुरूप का अनुभव होता है तो इसका कारण यह होता है कि उस कुरूप के सामने आ जाने से हमारे अन्तर में उसके मुक़ाबले का सौंदर्य प्रभावित हुआ, जिसके कारण उसका अनुभव ठीक हमें उसी तरह हो जाता है, जिस तरह प्रकाश के हटने से अंधेरे का। या शरीर से गर्मी के निकलने के समय सर्दी का अनुभव होता है। मानो कुरूप का अनुभव वास्तव में आंतरिक आघात की अभिव्यक्ति है।

व्यक्तिगत गुण, चेतना, संकल्प, प्रेम और वात्सल्य आदि का प्रदर्शन क्योंकि शारीरिक अस्तित्व के माध्यम से होता रहता है, इसलिए भी मनुष्य मूर्तमान चीज़ों के प्रति आसक्त होता है। उसके विचार में शारीरिक अस्तित्व की उपेक्षा करना व्यक्तिगत गुणों बल्कि स्वयं व्यक्तित्व की उपेक्षा का पर्याय है किन्तु तथ्य यह नहीं है। न सुनने और देखने का वास्तविक सम्बन्ध बाह्य से है और न व्यक्तिगत गुणों का स्रोत मनुष्य का बाह्य अस्तित्व है। सुनने और देखने के रूप में

वस्तुतः केवल हमारा आंतरिक अनुभव व्यक्त होता है। मूर्तमान चीज़ों का निरीक्षण स्वयं अपनी आंतरिक संभावनाओं का अनुभव है।

शरीर तो वास्तव में देखे ही नहीं जा सकते जब तक कि उनके साथ रंग न हो और रंग भी प्रकाश के बिना दिखाई नहीं देता। प्रकाश न स्वयं शरीर है और न पराश्रित है कि किसी शरीर में संव्याप्त हो। उसका शरीर से अलग एक अपना स्थायी अस्तित्व है।

आधुनिक विज्ञान भी एक ऐसे स्तर पर पहुँच चुका है जहाँ पदार्थ और चेतना दो प्रतीत नहीं होते। गोडेल ने अपने एक निबन्ध में लिखा है—

> "अब सहसा क्वांटम मैकेनिक (Quantum Mechanic) के मोड़ के आस-पास आब्जेक्टिव फील्ड (Objective Field) के उद्घाटन ने भौतिक-विज्ञान के विद्वानों (Theorists) को एक चिंता में डाल दिया है। उनके समक्ष जगत् का एक अस्पष्ट दृश्य है, जहाँ दर्शक और दृश्य इस प्रकार एक हो जाते हैं कि उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। उनका समन्वय इतना निकट का है कि एक-दूसरे में प्रतिबिम्बित होता है, किन्तु एक-दूसरे से अलग होने या संव्याप्त होने की शक्ति उनमें नहीं है।"

"अनिश्चितता की इस परिधि में परीक्षण पर आधारित हमारे पहले के ज्ञात समस्त लक्षण और फ़ॉर्मूले साथ नहीं देते। ऊर्जा और पदार्थ (Energy and Matter) की धारणा में इतने गहरे परिवर्तन की आवश्यकता है कि इनका मौलिक अर्थ ही समाप्त हो जाएगा। ऊर्जा पदार्थ में परिवर्तित होती (Condensers into matter) और पदार्थ-गुण से अलग होकर रश्मि (Radiation) में बदल जाता है। लाइट क्वाण्टा (Light Quanta) के फैलाव से सम्बन्धित लहरों के 'दिक्-काल' (Space and time) में फैलाव के लिए किसी आधार की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह न तो किसी तरल (Fluid) में, न किसी ठोस (Solid) में और न किसी गैस ही में लहराते हैं। सादृश्यता (Analogy) के अवास्तविक तार ही उन्हें पानी की सतह पर लहराती हुई लहर के प्रतिबिम्ब से बांधे रखते हैं। वास्तव में वे संभावनाओं और चेतना की

लहरें (Wave of Probability and Consciousness), एक ग़ैर महसूस प्रक्रिया की वक्ररेखा के परिवर्तित रूप (Curvilinear variation of Abstract function) हैं, जिन्हें हमारी चेतना या विचार शक्ति दूर-दूर तक भेजती है।"

बाह्यतः पदार्थ के अध्ययन में द्रष्टा और दृश्य में द्वैत शेष रहेगा, चाहे वे परस्पर कितने ही मिले-जुले और गुथे हों। विज्ञान इस द्वैत की व्याख्या में असमर्थ है। केवल आध्यात्म के द्वारा ही इसकी व्याख्या संभव है।

बातचीत के समय वास्तव में हमारी आत्मा ही बोलती है। उसकी वाणी मस्तिष्क और जिह्वा के माध्यम से होकर वायु में तरंग पैदा करती है। इस प्रकार प्रत्येक कर्म वास्तव में हमारी आत्मा का कर्म है। आत्मा जिस रीति से हमारे शरीर को प्रभावित करके अपने कर्मों को व्यक्त करती है, वह भी आत्मा की तरह अकथनीय है। हम उसकी व्याख्या नहीं कर सकते। हमारी वाणी हमारी आत्मिक वाणी का प्रत्यक्ष रूप और हमारा सुनना-देखना हमारे आत्मिक सुनने-देखने का मूर्तमान रूप है। इसी प्रकार हमारा बाह्य सौंदर्य और व्यक्त नैतिकता और चरित्र आदि गुण भी आत्मिक सौंदर्य और चरित्र का प्रतिबिम्ब हैं। हम जब कोई चीज़ देखते हैं तो वास्तव में हमारी आत्मा को अपने भीतर उसका सूक्ष्म रूप में अवलोकन होता है। ज्ञान और अनुभव के लोक में वास्तविक कार्य-कलाप केवल सूक्ष्मता का है। मूर्तमान चीज़ें अपने अस्तित्व और स्थायित्व यहाँ तक कि अपने विलोकन तक के लिए सूक्ष्मता पर निर्भर करती हैं। मूर्तमान चीज़ें अपनी वास्तविकता की दृष्टि से सूक्ष्म मात्र हैं।

उपर्युक्त विवेचन से इस बात का भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है कि व्यक्तित्व का वास्तविक सम्बन्ध मूर्तमान वस्तुओं से नहीं बल्कि उसका वास्तविक सम्बन्ध अमूर्त अस्तित्वगत गुणों से है। क्योंकि व्यक्तिगत गुणों का प्रदर्शन यहाँ शरीर के माध्यम से होता रहता है। इसलिए जब हम किसी व्यक्तित्व की कल्पना करते हैं तो अचेतन में उसे मूर्त रूप देने लगते हैं। निश्चितता के साथ विशुद्धता का दामन थामे रहना हमारे लिए अत्यंत कठिन होता है।

ईश्वरीय सत्ता

ईश्वर की सत्ता व्यापक, अयोगिक एवं अकथनीय है। उसका अस्तित्व, निश्चितता और मूर्तता से परे है। उसका सुनना, देखना और बोलना सभी गुण और विशेषताएँ मूर्तमान वस्तुओं से परे हैं। उसकी वाणी बाह्य स्वर और ध्वनि की पाबन्द नहीं, दुनिया में केवल मिसाली माध्यमों के द्वारा उसकी वाणी का अनुभव होता है, जैसा कि क़ुरआन में आया है—

> "किसी मनुष्य की यह शान नहीं कि अल्लाह उससे बात करे, सिवाय इसके कि प्रकाशना के द्वारा या परदे के पीछे से (बात करे)।" (क़ुरआन, 42:51)

उसके दर्शन भी उसकी वाणी के सदृश है यहाँ वाणी और दर्शन दोनों केवल मिसाली रूप में संभव हैं।

आदि और अन्त केवल ईश्वर है। क़ुरआन में है—

> "वही आदि है और अन्त भी, और वही व्यक्त है और अव्यक्त भी।" (क़ुरआन, 57:3)

उसी का गुण है कि वह व्यक्त है और अव्यक्त भी। उसके अस्तित्व में सांख्यिक अधिकता या यौगिकता नहीं पाई जाती। इसलिए गुण उसमें अलग-अलग मौजूद नहीं है। उनसे अभिप्राय केवल उसकी सत्ता ही है। काल में यह शाश्वतता (Eternity) का और दिक् (Space) में असीमितता (Infinity) का स्वामी है। उसके विषय में कायावाद (Anthropomorphism) और सर्वेश्वरवाद (Pantheism) दोनों ही धारणाएँ असत्य हैं। सर्वेश्वरवाद से अभिप्रेत वह धारणा है जिसके अंतर्गत जगत् और तमाम चीज़ों को ईश्वरीय सत्ता का अंश ठहराया जाता है। वह हर जगह मौजूद (Immanent) है। किन्तु इसके साथ उत्कृष्ट एवं लोकातीत (Transcendent) भी है। उसका संग-साथ इन्द्रीय अनुभवातीत है।

क़ुरआन ने स्वयं ईश्वरीय सत्ता की एक ऐसी धारणा प्रस्तुत की है, जहाँ उपलक्ष्य के स्थान पर केवल यथार्थ पाया जाता है। क़ुरआन ने

विशुद्धता को शिखर तक पहुँचा दिया है कि उसके काया-युक्त होने का भ्रम तक शेष न रहा। क़ुरआन में है कि– "उसके सदृश कोई नहीं।" (42:11) "निगाहें उसे नहीं पा सकतीं, बल्कि वही निगाहों को पा लेता है।" (6:103) अल्लाह के ईश्वरत्व में कोई और सम्मिलित हो यह असंभावित है। अलबत्ता एक सीमा तक ईश्वर के गुणों की प्रतिच्छाया की संभावना किसी में पाई जा सकती है। उदाहरणार्थ हम किसी के विषय में कह सकते हैं कि वह दयावान है। दया ईश्वरीय गुण है किन्तु दया का अंश या उसकी प्रतिच्छाया लोगों में भी पाई जा सकती है। क़ुरआन में है– "और अल्लाह की मिसाल अत्यंत उच्च है।" (16:60)

मानव-अस्तित्व और ईश्वरीय अस्तित्व के मध्य अनुकूलता एवं सादृश्य

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इस शारीरिक अस्तित्व से अलग हमारी एक स्वतंत्र हैसियत है जिसे हम आत्मा कहते हैं। हमारा व्यक्तित्व पूर्णतः हमारी आत्मा पर निर्भर करता है। हमारी आत्मा मूर्तमान चीज़ों से परे और दिक्-स्थान से मुक्त है। इसी लिए उसके समस्त गुण, चेतना, ज्ञान और संकल्प आदि भी मूर्तमान वस्तुओं से परे और दिक्-स्थान से मुक्त हैं। इस प्रकार हमारी आत्मा और ईश्वर के अस्तित्व के मध्य अत्यंत समरूपता पाई जाती है।

जिस प्रकार ईश्वर की सत्ता ज्ञानेन्द्रियों की सीमा से परे, दिशा के प्रतिबंध से मुक्त, सीमाओं और निश्चितता से परे है; उसी प्रकार हमारी आत्मा भी दिक्-स्थान से मुक्त है। आत्मा में भी किसी कथनीय भाव और परिमाण का पता नहीं चलता और न किसी दिशा और दिक् का निशान मिलता है। जिस प्रकार ईश्वर ही वह तत्वदर्शी और प्रबंधकर्ता है जिसके कारण जगत् का क़ायम रहना संभव हुआ उसी प्रकार हमारा शारीरिक अस्तित्व हमारी आत्मा के कारण बना रहता है।

जिस प्रकार ईश्वर हर चीज़ को देखता और सुनता है किन्तु न वहाँ रंग और रूप आदि किसी प्रकार की भौतिकता का गुज़र होता है और न आवाज़ उसकी श्रवण-शक्ति से टकराती है, उसी प्रकार हमारी आत्मा सूक्ष्म रूप से देखती और सुनती है। हमारी आत्मा तक किसी

शरीर, रंग और आवाज़ की लहर का गुज़र नहीं होता। इसके अतिरिक्त स्वप्नावस्था में या आँख को बन्द रखने के बाद भी कल्पना-जगत् में हमारी आत्मा देखती और सुनती है, हालाँकि उस समय कोई आवाज़ आत्मा से न टकराती है और न किसी रंग-रूप का उस तक गुज़र होता है।

फिर जिस प्रकार ईशवाणी की विशुद्धता का हाल यह है कि न उसमें शब्दों और स्वर की सीमा-बद्धता है और न उच्चारण की पाबंदियाँ हैं। किन्तु वाणी में सच्चाइयाँ और अर्थवत्ताएँ भी हैं और सुनना और सुनाना भी है। शब्द और उच्चारण तो इहलोक में आकर प्रकट होते हैं। इसी प्रकार हम अपनी आत्मा की आवाज़ को सीधे दिल के कानों से सुनते हैं, हालाँकि उसकी वाणी में न किसी प्रकार की आवाज़ होती है और न उसमें शब्दों का कोई योग।

इस प्रकार अपने आत्मिक अस्तित्व के कारण हमें ईश्वर की सत्ता, और उसकी विशुद्धता और पवित्रता का कुछ भान हो जाता है और साथ ही साथ हमारी बुद्धि इसे भी मानने लगती है कि हमारी आत्मा और ईश्वर के अस्तित्व के मध्य अत्यंत गहरी समरूपता पाई जाती है।

ईश्वरीय सौंदर्य

सौंदर्य हमारे अन्तर की उपलब्धि है। यह आंतरिक सौंदर्य है जिसे बाह्य जगत् में विभिन्न रूपों और रंगों के द्वारा अनावृत किया गया है। हर वस्तु में सुन्दरता और आकर्षण का भाव हमारे अन्तर द्वारा जनित है। फूलों की सुगन्ध हो या पक्षियों का मधुर बोल, पशुओं के शरीर हों या उनकी विभिन्न जातियाँ, हर प्रकट में मनोरमता हमारी आंतरिक चेतना की दृष्टि से पैदा होती है। सौंदर्य का सम्बन्ध हमारी चेतना और चक्षु से है। चक्षु के विषय में हम जानते हैं कि वह मात्र सूक्ष्मता है, इसलिए सौंदर्य भी अनिवार्यतः अपनी वास्तविकता की दृष्टि से मूर्तमान से परे एक सूक्ष्मतम वस्तु है, जिससे ईश्वर की सत्ता का आभूषित होना कदापि असंभव नहीं है। जो सत्ता अपनी क्रियाशीलता के हर कोने में दयालुता और दानशीलता का उद्गम और सौंदर्य और पूर्णता का स्रोत

सिद्ध हो रही है वह निश्चय ही अपने निजत्व की दृष्टि से भी सर्वथा सुन्दर और दयालुता और कृपाशीलता का स्रोत होगी।

सारांश

जिस समय आत्मा का सम्पर्क शरीर से टूट जाता है तो हमारा शारीरिक अस्तित्व भी शेष नहीं रहता। इसे हम मृत्यु कहते हैं। कल्पना लोक में मृत्यु के पश्चात् भी हम अपने को मौजूद पाते हैं। वास्तव में अस्तित्व का अनस्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वभावतः हमारी बुद्धि को आत्मा की प्रतीति होती है, सामीप्य के कारण अभिरुचि के अन्तर्गत हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि आत्मा में वैयक्तिक गुण पाए जाते हैं। वह वैयक्तिक गुण, जैसे जीवन, ज्ञान, संकल्प और करुणा आदि से पूर्णतः युक्त है। हम इस शारीरिक अस्तित्व की उपेक्षा करने के पश्चात् भी अपने आत्मिक अस्तित्व की कल्पना करने में सफल हो जाते हैं। कल्पना के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसकी गूढ़ बारीकियों को भी पा लें।

हमारे आत्मिक अस्तित्व और ईश्वर के अस्तित्व के मध्य अत्यन्त समरूपता पाई जाती है। हम अपने आत्मिक अस्तित्व की कल्पना के द्वारा ईश्वर की रहस्यमयी सत्ता की कल्पना भी सहज ही कर सकते हैं। इस प्रकार हमारी बुद्धि या विवेक ईश्वरीय सत्ता की प्रतीति में सफल हो जाता है और केवल यही नहीं कि ईश्वर की महान सत्ता की प्रतीति हमारे अन्दर जाग जाती है, बल्कि हमें इसकी भी प्रतीति होने लगती है कि वह महान सत्ता सर्वथा पूर्ण सुन्दर और सौन्दर्य पूर्णता का स्वामी है।

इस सफलता के पश्चात् आस्था के लिए एक ऐसी धारणा मिल जाती है जो इससे पूर्व संभव न थी। हम एक महान और रहस्यमयी सत्ता की कल्पना करने में सफल हो जाते हैं, जो यद्यपि आत्यन्तिक उच्चता पर है; किन्तु अपनी विनम्रता के हाथों से उसकी उच्चता एवं महानता के दामन को थामे रहना अब हमारे लिए असंभव नहीं रहता।

जब हमारे आत्मिक व्यक्तित्व की, उसके दिक्-क्षेत्र से परे होने के

बावजूद, बुद्धि को प्रतीति हो जाती है तो वह ईश्वर की सत्ता की और अधिक प्रतीति कर सकती है। इस प्रकार यह बात भी समझ में आ जाती है कि बन्दों के साथ उसका सम्बन्ध निश्चय ही इन्द्रियातीत है।

सत्य का जो ज्ञान मनुष्य को प्राप्त होता है, उसका सार केवल यह है कि मनुष्य का अन्तःकरण सत्य को पा ले। उसकी बुद्धि न केवल यह कि ईश्वर को स्वीकार करने पर बाध्य हो बल्कि उसे यह भी प्रतीत होने लगे कि उसका ईश्वर परम (Supreme) गुणों से आभूषित और कौशल्य का स्वामी है। इसके लिए सत्य की गूढ़ता और सूक्ष्मता का पा लेना आवश्यक नहीं है। हम नित्य एक-दूसरे की बातें सुनते हैं किन्तु आज तक किसी वैज्ञानिक की समझ में यह बात न आ सकी कि वायुमण्डल में आवाज़ की जो लहरें पैदा होती हैं, वे हमारी चेतना को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। हमारा मस्तिष्क किस प्रकार उन्हें अपनी पकड़ में लेकर उससे हमें सूचित करता है। अपनी चेतना की वास्तविकता और उसके बाह्य प्रभावों के प्रभावित होने की कैफ़ियत से बेख़बर रहने के बावजूद हमें अपनी चेतना और उसके प्रभावित होने की प्रतीति होती है। इस सिलसिले में हमें कोई बेचैनी नहीं होती। इसी प्रकार यदि अपनी सामर्थ्य की हद तक हमारी बुद्धि को सत्य की प्रतीति होने लग जाए तो हम अपने उद्देश्य में सफल हैं।

यह एक सत्य है कि ईश्वर की सत्ता की प्रतीति के बाद भी मनुष्य की हैरानी दूर नहीं होती। उसकी कल्पना के पश्चात भी ईश्वर की सत्ता रहस्यमय ही रहती है। उसकी उच्चता और बड़ाई में कोई अन्तर नहीं आता। वह अपनी महानता और उच्चता के साथ सामान्य रूप से दृष्टिगत नहीं होता। वह इससे उच्चतर है कि प्रत्येक आने-जानेवाले की गुज़रगाह बन जाए। यहाँ तो उसकी प्रतीति का सार यह है कि इसकी प्रतीति हो जाए कि उसकी प्रतीति सरल नहीं। अलबत्ता वह हैरानी जो ज्ञान के कारण पैदा होती है उस हैरानी से नितांत भिन्न है जो अज्ञान के कारण होती है।

इस विषय में विचारात्मक प्रयास को इससे आगे बढ़ाना अत्यंत ख़तरनाक और व्यर्थ है। मनुष्य के लिए सुरक्षित मार्ग यह है कि ऐसे अवसर पर अपनी असमर्थता को स्वीकार करे। इस प्रकार के प्रयासों

और चिंतनों से मामले की गुत्थी न कभी सुलझ सकी है और न आगे इसकी आशा की जा सकती है। इसी लिए हदीस के अनुकरणकर्ताओं ने ईश्वर के गुणों का अर्थ निर्धारित करने में अनुचित प्रयासों से काम लेने को सदैव ग़लत समझा और अपने लिए केवल समर्पण की नीति को पसन्द किया। इस सम्बन्ध में समर्पण और मौन का अर्थ यह है कि ईश्वर के लिए जो गुण भी क़ुरआन से मालूम होते हैं; उदाहरणार्थ– हस्त, मुखारबिन्द इत्यादि, इनको स्वीकार करे। अपनी ओर से वास्तविक अर्थ के निर्धारण में न पड़े। अलबत्ता यह आवश्यक है कि ईश्वरीय गुणों को अपनी तरह न समझे। बस यह ध्यान रहे कि जैसी उसकी सत्ता है, उसी के अनुरूप उसके गुण भी हैं। उनकी गूढ़ता और वास्तविकता को हम नहीं पा सकते। हदीस शास्त्र के विद्धानों ने सम्प्रदाय जहमियो की इस धारणा, को कि ईश्वर निर्गुण है– ग़लत ठहराया, क्योंकि इसमें तो ईश्वर को अकर्मण और निष्क्रिय स्वीकार करना पड़ेगा। मो-तज़िला सम्प्रदाय और अशाइरा सम्प्रदाय ने ईश्वर के गुणों की जो व्याख्याएँ की हैं उनमें भी उन्हें अनिस्पंदता की गंध महसूस हुई। मुतकल्लिमीन (इस्लामिक दार्शनिकों) ने जब उनपर यह इलज़ाम लगाया कि वे तो ईश्वर को काया-मुक्त मानते हैं तो उत्तर में उन्होंने यही कहा कि तुम्हारें ईश्वर को निष्क्रिय और अकर्मण मानने की धारणा से तो हमारी तथाकथित कायावाद की धारणा ही उत्तम है। गुणों के निषेध के पश्चात् तो स्वीकार के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता, जिसको आस्था और धारणा का आधार बनाया जा सके। पश्चात्कालीन विद्वानों में इमाम इब्ने-तैमिया और हाफ़िज़ इब्ने-क़य्यिम ने अपने लिए वही मत पसंद किया जो पूर्वजों का मत था। समर्पण की नीति से ये लोग भी अलग न हुए।

दर्शन द्वारा कल्पना सम्बन्धी प्रयास बहुत आगे बढ़े। परिणामस्वरूप विभिन्न मत-मतांतर पैदा हुए। किन्तु सत्य यह है कि मामले को सुलझाने में सभी असफल रहे।

इमाम राज़ी अंततः स्वीकार करते हैं–

"मैंने इल्मे-कलाम (मीमांसा) और दर्शन के तरीक़ों को भलीभाँति परखा। अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि न तो इनमें किसी बीमार के

लिए शिफ़ा है और न किसी प्यासे के लिए तृप्ति। मेरी दृष्टि में सबसे अधिक सत्य के निकटतम मार्ग वही है, जिसे क़ुरआन ने अपनाया है। (अर्थात् न स्वीकार का दामन छूटे और न विशुद्धता में अन्तर आने पाए, उसे कायावाद और अनिस्पंदता दोनों से बचाया जाए।) स्वीकार में ये आयतें पढ़ लेते हैं।– "उसी की ओर अच्छा पवित्र बोल चढ़ता है।" (क़ुरआन, 35:10) 'वह रहमान जो राजासन पर विराजमान हुआ।' (क़ुरआन, 20:5) और कायावाद के निषेध में ये आयतें पढ़ लेते हैं– "उसके सदृश कोई चीज़ नहीं।" (क़ुरआन 42:11) और "वे अपने ज्ञान से उसपर हावी नहीं हो सकते।" (क़ुरआन, 20:110) जिसको मेरी तरह इस सत्य का ज्ञान हो जाएगा और जो व्यक्ति उन लोगों के कथनों पर विचार करेगा, जिन्होंने नबियों की शिक्षाओं और परंपराओं से प्रमाणीकरण नहीं किया तो वह उन्हें आश्चर्य, दुविधा, पथभ्रष्टता और चक्रवृद्धि अज्ञान में ग्रस्त पाएगा।"

(रसायल इब्ने-तैमिया, मिस्र से प्रकाशित, पृ. 109)

ईश-दर्शन

क़ुरआन और हदीस से मालूम होता है कि ईश्वर के दर्शन प्राप्त होंगे। मोमिन ईश्वर को देखेगा। किन्तु उसका दर्शन सामान्य मूर्तमान चीज़ों से परे होगा। आध्यात्मिकता के आधिक्य से मनुष्य उसके दर्शन को सहन कर लेगा। आख़िरत की विकसित व्यवस्था में सच्चाइयाँ व्यक्त होने के लिए भौतिक वस्त्रों पर निर्भर नहीं होंगी। वहाँ अनावरण उनका प्रदर्शन होगा, वर्तमान जगत् के विपरीत वहाँ असूक्ष्मता पर सूक्ष्मता को प्रधानता प्राप्त होगी। जो कुछ यहाँ छिपा है वहाँ अनावृत हो जाएगा, हृदय और दृष्टि के मध्य वहाँ किसी प्रकार की अपरिचितता बिलकुल ही शेष न रहेगी।

ईश्वर ही हमारी स्वाभाविक अपेक्षाओं का सही उत्तर है

वर्तमान जगत् के कमज़ोर सहारों के मध्य हमारे लिए ईश्वर ही एक स्थाई और सुदृढ़ सहारा है। हृदय के एकांत गृह से लेकर जीवन की आपा-धापी में कहीं भी उससे हमारा सम्बन्ध विच्छेदित नहीं होता। ऐसे नियम और क़ानून जिनका पालन मनुष्य पूरी निश्चिंतता और भरोसे के साथ कर सके, केवल वही दे सकता है। ईश्वर की धारणा एक अभीष्ट और प्रिय धारणा है, जिससे एक क्षण के लिए भी ग़ाफ़िल होना एक अक्षम्य अपराध है। ईश्वर और उसके बन्दे का सम्बन्ध अत्यंत निकटता का सम्बन्ध है। जो सम्बन्ध आत्मा और शरीर के मध्य पाया जाता है उससे कहीं अधिक निकटता का सम्बन्ध बन्दे का ईश्वर से होता है। समरूपता के अतिरिक्त प्रेम सामीप्य पर भी निर्भर करता है। इसलिए ईश-पूजा और ईश-प्रेम का जीवन मनुष्य का अपना अभीष्ट जीवन है। ईश्वर का आज्ञापालन एक ऐसे शासक का आज्ञापालन है, जिसके शासन का सिंहासन स्वयं हमारे हृदय की गहराई है।

☆☆☆

लेखक की कुछ अन्य पुस्तकें

अनूदित क़ुरआन
अल-असमाउलहुस्ना (काव्य)
इस्लाम एक प्रेरणा
इस्लाम एक मधुर उपहार
इस्लाम क्या है?
एक ईश्वर की कल्पना
क़ुरआन सबके लिए
नबी करीम (सल्ल॰) की दुआएँ
नबी करीम (सल्ल॰) की दुआएँ (पॉकिट)
परलोक की छाया में
परलोकवाद और भारतीय धर्म-ग्रन्थ
सूरा फ़ातिहा
सत्य-साधना
हदीस क़ुदसी
हदीस शास्त्र एक परिचय
हदीस सौरभ (पहला भाग)
क्षितिज के पार (काव्य संग्रह)
रिसालत
पहेली जीवन की
नैतिकता
क़ुरआन के पारिभाषिक शब्द
मानव पर एकेश्वरवाद का प्रभाव